प्रवचन नं. १६७, गाथा-७९, दिनांक १२-०१-१९७९, शुक्रवार, पौष शुक्ल १५

७८ गाथा पूरी हुई है, है ? ७९ के ऊपर, तीन लाईन है। सूक्ष्म बात है।

अब पूछता है कि... है ? एकदम कुछ सुना नहीं, यह बात एकदम। **अब प्रश्न करता है कि जीव के परिणाम को,...** अर्थात् ? जीव के परिणाम यहाँ उसे कहना है कि, जिसने आत्मा को ज्ञायक जाना है, जिसकी धर्मदृष्टि हुई है। धर्मी ऐसा जो आत्मा ज्ञायक त्रिकाली स्वरूप की जिसे दृष्टि और ज्ञान हुआ है, ऐसे धर्मी के परिणाम, वे जीव के

परिणाम कहे जाते हैं। इस शब्द की यह व्याख्या है। जीव के परिणाम अर्थात् कि जिसने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मा को धर्मीरूप से जाना और पहिचाना और अनुभव किया है, ऐसे जीव के परिणाम—सम्यग्दर्शन के, सम्यग्ज्ञान के, शान्ति के, स्वच्छता के, आनन्द के, वे जीव के परिणाम कहे जाते हैं। समझ में आया?

उन **जीव के परिणाम को, अपने परिणाम को...** अर्थात् कि पुद्गल जो कर्म जड़ है, जड़ का परिणाम वह अन्दर में राग और द्वेष के परिणाम होते हैं, वे जड़ के परिणाम हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! पहले जीव के परिणाम कहे, तो जीव तो ज्ञायकस्वरूप है। ऐसा जिसे—धर्मी को ज्ञान और भान हुआ है, उसके परिणाम तो धर्म के अर्थात् ज्ञान के, दर्शन के, शान्ति के, प्रभुता के, ईश्वरता के परिणाम जो निर्मल हैं, वे ज्ञान के-आत्मा के परिणाम कहलाते हैं। उसके जो राग-द्वेष और पुण्य-पाप के भाव हों, वे जीव के परिणाम नहीं हैं। आहाहा!

जो अपने परिणाम अर्थात् पुद्गल के परिणाम। जो अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम उत्पन्न हों, वे राग और द्वेष के परिणाम, वे वास्तव में पुद्गलकर्म हैं, उसके वे परिणाम हैं। समझ में आया? गाथा बहुत सूक्ष्म है। प्रेमचन्दभाई! लन्दन से आये हैं, भाई, वहाँ वाँचन करते हैं। यह सूक्ष्म बातें बहुत आयी है, भाई! मूल कुछ धर्म क्या है, यह सुना नहीं और जगत के काम के कारण अवकाश भी कहाँ है? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा पर के काम तो कर नहीं सकता, लिखने का काम, यह आत्मा कर नहीं सकता, बोलने का काम यह आत्मा कर नहीं सकता, हिलने का काम यह आत्मा कर नहीं सकता। आहाहा! तदुपरान्त यहाँ तो अन्दर जो कुछ दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा, भक्ति के भाव तथा हिंसा, चोरी, झूठ विषय-वासना, जगत के परिणाम जो कुछ ऐसा करूँ और ऐसा करूँ, ऐसे जो विकारी परिणाम, वे वास्तव में तो पुद्गलकर्म है, उसका वह परिणाम कर्म है। पुद्गलकर्म है, उसका वह कार्य है, आत्मा का नहीं। आहाहा! वह अपने परिणाम अर्थात् पुद्गल के परिणाम, अपने अर्थात् पुद्गल के परिणाम। राग और द्वेष, दया, दान, काम-क्रोध के परिणाम, वे अपने अर्थात् पुद्गलकर्म के। **अपने परिणाम को और अपने परिणाम के फल को...** अर्थात्? कि जो अन्दर सुख-दुःख की

कल्पना होती है, हर्ष-शोक का भाव होता है, वह सब कर्म का फल है, आत्मा का नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वह अपने परिणाम के फल को अर्थात् हर्ष-शोक होता है, सुख-दुःख की कल्पना होती है कि इस स्त्री में सुख है, पैसे में सुख है—ऐसी जो कल्पना होती है, वह यहाँ धर्मी जीव के वे परिणाम नहीं हैं। आहाहा! वे परिणाम पुद्गल कर्म है, उसके हैं। बहुत सूक्ष्म बात है, भाई। आहाहा! यह पुद्गल जो जड़ कर्म है, वह अपने परिणाम को अर्थात् पुण्य और पाप के भाव को, वह उसके परिणाम हैं, जीव के नहीं। जीव तो ज्ञायकस्वरूप है, जाननेवाला है। उस जाननेवाले को जाना, ऐसा जो जाननेवाले को जाना, उसके परिणाम तो जानने के-देखने के, श्रद्धा करने के, आनन्द के होते हैं। आहाहा! पकड़ में आये उतना पकड़ो, बापू! यह तो अलौकिक बातें हैं। जगत में कहीं (है नहीं)। आहाहा!

इससे पहले जीव के परिणाम को कहा। वे ज्ञानी के ज्ञान के भानवाले के परिणाम उसे, ज्ञानी के परिणाम तो ज्ञाता, दृष्टा, श्रद्धा, शान्ति, वे उसके परिणाम हैं। **वे जीव के परिणाम, अपने परिणाम...** अर्थात् पुद्गल के परिणाम राग-द्वेष, दया, दान, काम, क्रोध, कमाने का भाव, व्यवस्था करने का भाव, वे सब विकार भाव, वह विकार भाव के परिणाम का पुद्गल कर्म कर्ता है।

मुमुक्षु : पुद्गल तो जड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ है न? वह भी जड़ है, पुण्य और पाप के भाव वे जड़ हैं, अचेतन हैं।

मुमुक्षु : पुद्गल द्वेष किस प्रकार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़, उसके परिणाम जड़, पर्याय में होता है, उसका परिणमन है, यह शरीर चलता है किस प्रकार? यह पर्याय कौन करता है? जड़ करता है या जानता है वह करता है, ऐसा कुछ है? अब वह-वह अवस्था ऐसी होती है, वह जड़ का काम है। जाने उसका ही काम हो, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा!

पुण्य और पाप के भाव, इस चैतन्य के स्वभाव का उनमें अभाव है। आहाहा! शुभ और अशुभ का भाव राग और द्वेष, उसमें चैतन्य भगवान ज्ञायकस्वरूप है, ज्ञान, उसके

ज्ञान के चेतन का, चेतन का अभाव राग में है। अरे रे! ऐसी बातें अब कहाँ? वह राग चाहे तो दया का हो या चाहे तो हिंसा का हो, चाहे तो भगवान की भक्ति का हो चाहे तो स्त्री, पुत्र को सम्हालने का हो, परन्तु वह राग धर्मी को वह राग उसका नहीं है। धर्मी जिसे धर्म समझ में आया है, उसके वे परिणाम नहीं हैं। आहाहा!

सूक्ष्म बात है, प्रभु! कभी इसने किया नहीं। तत्त्व क्या है अनन्त काल में ऐसे का ऐसा ८४ में भटकने में बिताया। एक-एक चौरासी योनि में अनन्त-अनन्त बार अवतरित हुआ है। और यह दुःखी होकर अवतरित हुआ है, दुःखी है। यह पैसेवाले हों या राजा हों या देव हों, वे सब आत्मा के विरोधी विकार भाव के करनेवाले, वे दुःखी हैं।

यहाँ यह तो उस अज्ञानी की बात है और अनादि से भटकता है उसकी (बात है), परन्तु जिसने आत्मा ज्ञायक है, चैतन्य ज्योति है, जलहल ज्योति चैतन्य चन्द्र, सूर्य, चैतन्य प्रकाश का नूर का पूर है आत्मा। आहाहा! ऐसा जिसने जाना और अनुभव में आया, ऐसे धर्मी के परिणाम में तो ज्ञातादृष्टा, आनन्द और शान्ति के उसके परिणाम होते हैं। उसमें जो उसे रागादि के परिणाम होते हैं, वे इस आत्मा के ज्ञायकस्वभाव में अनन्त गुण का स्वरूप है, वह कोई गुण रागरूप हो, ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! इसलिए गुण को जैसे, गुणी अर्थात् यह चावल की गुणी (बोरी) और गेहूँ की बोरी वह नहीं। गुणी अर्थात् यह भगवान अनन्त गुण का धनी ऐसा गुणी। आहाहा! जिसमें अनन्त... अनन्त... अनन्त... अपार अनन्त गुण पड़े हैं, ऐसे अनन्त गुण का धनी गुणी, ऐसे गुणी का जिसे ज्ञान और भान हुआ है, ऐसे धर्मी के परिणाम तो जानने के-देखने के आनन्द के होते हैं।

इसमें जो यह राग दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के परिणाम होते हैं, वे सब पुद्‌गल के परिणाम हैं। आहाहा! चैतन्य ज्ञायकस्वरूप परिणमकर राग करे, ऐसा तो उसमें कभी है नहीं। आहाहा! इसलिए कहते हैं, जिसे धर्म समझ में आया है, जिसे आत्मा ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप है, ऐसा जिसे अन्तर्ज्ञान हुआ है, उस ज्ञानी के परिणाम ज्ञान और आनन्द के होते हैं, वे जीव के परिणाम हैं। अपने आप तो एक अक्षर भी हल हो ऐसा नहीं है। ऐई! लखुभाई! गाँव की पंचायत के कारण और या फिल्म की और लड़कों को सम्हालने में मार डाला जगत को। किसने मार डाला? स्वयं ने। स्वयं ज्ञायक और चैतन्य ज्योति है, उसे न मानकर मैं इस राग का करनेवाला और इसका करनेवाला, उसने जीवन्त ज्योति का निषेध

किया है, उसने जीवन्त का निषेध किया है, वह जीव की हिंसा की, उसने अपनी (हिंसा की)। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे की हिंसा कर सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे की हिंसा नहीं कर सकता। दूसरे की दया और दूसरे की हिंसा जीव तीन काल में नहीं कर सकता। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो स्वयं भगवान चैतन्य ज्योति है, अनन्त चैतन्याकार रत्नाकर का सागर प्रभु है। ऐसा जिसे अन्तर में स्वतत्त्व का ज्ञान और भान हुआ है, उस जीव के परिणाम तो ज्ञान-दर्शन-आनन्द और शान्ति के उसके परिणाम होते हैं। एक बात। यह जीव के परिणाम की व्याख्या हुई। और अपने परिणाम अर्थात् पुद्गल कर्म के परिणाम अर्थात् अन्दर जो शुभ और अशुभभाव हो। राग, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध, कमाना, कमाने के भाव, वह ज्ञानी को वे परिणाम पुद्गल के हैं, मेरे नहीं। पुंजाभाई! ऐसा वहाँ कहीं नैरोबी में मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा!

वे अपने परिणाम, अर्थात् पुद्गल के परिणाम, अर्थात्? जो शुभ और अशुभभाव होते हैं, वे पुद्गल के परिणाम हैं, चैतन्य के नहीं। आहाहा! दो। **अपने परिणाम के फल को...** अर्थात् कि पुद्गल है, उसमें होते राग-द्वेष और उसमें होता उसका फल हर्ष-शोक, सुख-दुःख की कल्पना, वह सब कर्म का फल है, जीव का नहीं। चैतन्य भगवान तो ज्ञानानन्द, सहजानन्दस्वरूप है। आहाहा! ऐसा जिसे ज्ञान और भान धर्म का हुआ, उसे सुख-दुःख की कल्पना, वह कर्म का फल है। **अपने परिणाम को, अपने परिणाम के फल को नहीं जाननेवाले ऐसे पुद्गलद्रव्य...** इन तीनों को जाननेवाला जड़ नहीं है। राग और कर्म, वह जीव के परिणाम को नहीं जानता, उसके-राग के परिणाम को वह राग नहीं जानता तथा राग का फल जो दुःख या सुख की कल्पना, उसे वह राग नहीं जानता। आहाहा! उस **पुद्गलद्रव्य को जीव के साथ कर्ताकर्मभाव है या नहीं?** अभी तो ऐसा प्रश्न है। आहाहा!

ऐसा प्रश्न जिसे अन्दर से उठा है, उसे यह उत्तर दिया जाता है। आहाहा! क्या कहा यह? जब ७६-७७-७८ में ऐसा कहा गया कि धर्मी जीव को धर्म ऐसा जो आत्मा, उसका

धारक, आनन्द और ज्ञान की शान्ति का धारक प्रभु, उसका जिसे ज्ञान, श्रद्धा और भान हुआ है, उस जीव के परिणाम तो शुद्ध आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान के परिणाम और समकित आदि के परिणाम, वे जीव के परिणाम हैं। और अपने अर्थात् पुद्गलद्रव्य के परिणाम, वे राग और द्वेष, वे पुद्गलकर्म के परिणाम हैं और उनमें सुख-दुःख की कल्पना, वह कर्म का फल है। उन तीनों को नहीं जाननेवाले ऐसे पुद्गलद्रव्य को... तीन हुए? क्या तीन हुए? अरे भगवान!

एक तो जीव के परिणाम शुद्ध, पुद्गल के परिणाम राग-द्वेष, उसका फल हर्ष और शोक, वह पुद्गल का कर्म और पुद्गल का फल है, उसे पुद्गल नहीं जानता। नहीं आत्मा के परिणाम को जानता, नहीं उसका राग, राग हुआ उस राग को जानता, राग में सुख की कल्पना हुई, नहीं उसे जानता। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! यह पहले से कहा था। और अब उसमें यह सब व्यापारी धन्धे के-पाप के पूरे दिन। ऐई! हिम्मतभाई! पैसा... पैसा... धूल... धूल... धूल... पूरे दिन महापाप धन्धा के, स्त्री-पुत्र को सम्हालने के अकेले पापभाव। यहाँ तो अज्ञानी है, वह पाप का कर्ता है और उसे दया-दान के परिणाम हों, वह भी अज्ञानी उनका कर्ता है और इसलिए वह कर्ता होकर चार गति में भटकता है।

परन्तु यहाँ तो अब ज्ञानी की बात है। कि जिसे भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का सागर, चैतन्य का रत्नाकर प्रभु है, आहाहा! उसका जिसे निमित्त से-राग से और पर्याय से भी विमुख होकर त्रिकाली ज्ञायकभाव के सन्मुख होकर... एक-एक अक्षर में बहुत अन्तर है, बापू! यह तो अध्यात्म वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा, त्रिलोकनाथ की यह वाणी है, उसे समझने के लिये तैयारी चाहिए, भाई! आहाहा!

यह पुद्गलद्रव्य जीव के साथ... क्या कहा यह? कि ज्ञानस्वरूपी भगवान ऐसा जहाँ ज्ञान हुआ, वह ज्ञान के परिणाम हुए, उसे राग जो पुद्गल है, वह ज्ञान के परिणाम को नहीं जानता। राग है, वह राग को नहीं जानता, तथा यह राग है, उसमें कल्पना हुई कि इस अनुकूलता में ठीक है और प्रतिकूलता में ठीक नहीं, वह सब राग का फल है। राग का फल राग नहीं जानता है, राग का कार्य राग नहीं जानता, राग आत्मा के निर्मल के परिणाम को नहीं जानता, तो ऐसे नहीं जाननेवाले को, ऐसे कर्म के रागादि को आत्मा के परिणाम

ज्ञान हो, उसमें कर्ताकर्मसम्बन्ध है या नहीं ? ऐसी बात है, बापू ! आहाहा ! क्या समझ में आया ? मोटाणी ! यहाँ तो ऐसी बातें हैं, बापू ! आहाहा !

शिष्य का प्रश्न यह है, ऐसा प्रश्न जिसे उठा, उसे यह उत्तर दिया जाता है। बाकी तो वाँचने-सुनने बेगाररूप से आवे और एक घण्टा सुने और ऐसा उसे यह नहीं समझ में आये। उसे यह उत्तर नहीं दिया जाता, ऐसा कहते हैं। वीरचन्दभाई ! हमारे वीरचन्दभाई बोटाद, हें ? आहाहा !

मुमुक्षु : दलीचन्दभाई...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वीरचन्दभाई है पीछे, दलीचन्दभाई तो कभी आते हैं और वीरचन्दभाई तो बहुत बार आते हैं। दलीचन्दभाई को व्यापार... व्यापार-धन्धा सब होवे न वहाँ पाप का। आहाहा !

प्रभु ! प्रभु ऐसा कहते हैं। आहाहा ! त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते हैं, कि जीव के परिणाम हम उसे कहते हैं कि जिसने ज्ञायक आत्मा को जाना है, तो उसके परिणाम जानने के-देखने के हों, वे जीव के परिणाम, और जो राग और राग का सुख-दुःख की कल्पना, वह राग का फल कर्म का है। आहाहा ! तो यह कहते हैं कि आत्मा के परिणाम को वह राग नहीं जानता। राग को राग नहीं जानता और राग का फल दुःख, दुःख की कल्पना को भी वह नहीं जानता, ऐसा वह पुद्गल, उसे आत्मा के परिणाम के साथ कुछ कर्ताकर्म है या नहीं ? यह राग कर्ता और यहाँ ज्ञान परिणाम उसका कार्य, ऐसा है या नहीं ? ऐसी कठिन बातें है, बापू ! क्या कहा, समझ में आया ? यह तो शिष्य का तो ऐसा प्रश्न है, उसके ख्याल में बात आयी है, कि यह...

मुमुक्षु : शिष्य ऊँचे नम्बर का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस ऐसे को यहाँ गिना है। बाकी साधारण को थोथा, जैसे अभी सुनने आया और चला जाये घण्टे दो घण्टे, वह कोई श्रोता नहीं, सुननेवाले नहीं। आहाहा ! चिमनभाई !

शिष्य ने क्या पूछा ? शिष्य ने क्या पूछा, वह समझ में न आवे। शिष्य का यह प्रश्न है कि जब यह आत्मा, आत्मा का जाननेवाला हुआ, तो यह तो ज्ञानस्वरूप भगवान है।

आत्मा तो चैतन्यस्वरूप है, तो चैतन्यस्वरूप के परिणाम तो जानने-देखने आनन्द के हों, परन्तु उस परिणाम को राग नहीं जानता। राग पुद्‌गल है, वह राग उस परिणाम को नहीं जानता, एक बात। राग राग को नहीं जानता, दो बात। राग का फल जो सुख-दुःख की कल्पना, उसे वह नहीं जानता। तीन बात। तो ऐसे जो राग के परिणाम पुद्‌गल के, पुद्‌गल के परिणाम, वे आत्मा के परिणाम का कुछ कर्ता है या नहीं ? क्योंकि जब ज्ञान होता है, वहाँ जैसा राग आवे, वैसा यहाँ ज्ञान उस समय में स्वयं से होता है, अरे ! अरे ! अब ऐसी बातें। अरे ! दुनिया कहाँ भटकती है न ! आहाहा ! क्या कहा ?

जब राग होता है, तब ज्ञानी को उस सम्बन्धी का ज्ञान स्वयं से होता है। राग है, इसलिए ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! बापू ! धर्म कोई अलौकिक चीज़ है। इसके बिना मरा गया चौरासी के अवतार में भटक-भटककर। आहाहा !

मुमुक्षु : दोनों का काल तो एक है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक है, काल एक है, तथापि राग के कारण ज्ञान नहीं हुआ। यह यहाँ सिद्ध करना है। ज्ञानी के ज्ञान में आत्मा ज्ञानस्वरूप ज्ञात हुआ, इसलिए उसके परिणाम जानने के स्व के और राग हो, उसके जानने के परिणाम हों, परन्तु वे परिणाम राग हैं, इसलिए हुए हैं, ऐसा नहीं है। इसलिए राग, वह कर्ता है और यहाँ जानने का काम हुआ, वह उसका कार्य है, ऐसा नहीं है। अरर ! एक-एक अक्षर... अरे भगवान ! क्या करे ? प्रभु ! तुझे तेरी खबर नहीं। तुझे तेरी खबर नहीं, नहीं पर की खबर। आहाहा !

यहाँ तो जिसे खबर पड़ी है, उसे वह खबर पड़नेवाले को, जाननेवाले के जानने के परिणाम को, समकित के परिणाम को, यह राग है, उस राग का ज्ञान यहाँ होता है, परन्तु वह ज्ञान राग है, इसलिए हुआ है, ऐसा नहीं है। उस समय अपना स्वभाव स्व और पर को जानने का होने से ज्ञान स्व-पर को जानता हुआ प्रगट होता है। राग हुआ, उसी काल में, उस समय में स्व-पर जानता हुआ ज्ञान प्रगट होता है। तो वह स्व-पर जानता ज्ञान होता है पर्याय, उसे यहाँ राग का ज्ञान कहना या नहीं ? राग कर्ता और जानने का परिणाम उसका कार्य, ऐसा कहना या नहीं ? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। आहाहा ! ऐसा उपदेश अब। वह तो अब दया पालो, व्रत पालो, दान करो, अपवास करो, मन्दिर बनाओ, यह तो सीधा सट्ट था भटकने का। यह तो भटकने का भाव है। आहाहा !

यह पहले प्रश्न समझ में आया ? यह पौने तीन लाईन का प्रश्न है। नवरंगभाई ! जीव के परिणाम को अर्थात् कि वीतरागी परिणाम जीव के—धर्मी के, अपने परिणाम को अर्थात् पुद्गल के परिणाम को अर्थात् राग को, और अपने परिणाम के फल को अर्थात् राग में सुख-दुःख की कल्पना हो उसको, नहीं जानते ऐसे पुद्गलद्रव्य को, वह नहीं जानता ऐसा राग और पुद्गलद्रव्य को, जीव के साथ कर्ताकर्म भाव है या नहीं ? ऐसा तो यह प्रश्न अभी शिष्य का, यह तो समझने में कठिन पड़े। अरे ! जगत की मजदूरी कर-करके मर गया। पूरे दिन व्यापार और धन्धा, स्त्री-पुत्र को सम्हालना, यह बड़ा मजदूर है। पापी बड़े पाप का करनेवाला मजदूर है। आहाहा ! मोटाणी ! यहाँ तो यह बात है, बापू ! आहाहा !

परन्तु जिसने इस मजदूरी के भाव को भी भिन्न करके अपने आत्मा को जाना है। आहाहा ! ऐसे जाननेवाले भेदज्ञानी को, जो परिणाम हों, वे तो निर्मल। राग हो, उसका यहाँ ज्ञान हो, ऐसा कहना वह व्यवहार है। बाकी तो उस समय में ज्ञानी को ज्ञान के परिणाम स्वयं से स्व-पर को जानने के होने से पर को जानना, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। बाकी जानने के परिणाम हुए हैं आत्मा से। राग का ज्ञान हुआ, वह राग है; इसलिए उसका यहाँ ज्ञान हुआ-ऐसा नहीं है। अरे रे ! अब ऐसी बातें। आहाहा !

अरे रे ! मनुष्य का भव चला जाता है, बापू ! मृत्यु के समीप जाता है, भाई ! जो-जो क्षण जाता है, वह देह की स्थिति पूरी होने का जो काल है, निश्चित है। जो-जो क्षण-दिन जाते हैं, बापू ! वह मृत्यु के समीप जाते हैं, उसमें यदि यह कोई आत्मा क्या और राग क्या, उसका ज्ञान नहीं किया। आहाहा ! अरे रे ! किस योनि में अवतरित होगा ? यह आँधी का तिनका कहाँ जाकर गिरेगा ? मिथ्याश्रद्धावाला जीव कि जिसे कुछ भान ही नहीं, वह मिथ्याश्रद्धा की आँधी में चढ़ा किस योनि में, कहाँ जायेगा ? आहाहा !

यहाँ तो जिसे आत्मज्ञान हुआ, उसका प्रश्न है। आहाहा ! जिसने पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उनसे भी भिन्न भगवान है। भगवान अर्थात् आत्मा, उसे जिसने राग से भिन्न भगवान को जाना है, कि यह राग है, वह पुण्य-पाप तत्त्व है; भगवान तो ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। आहाहा ! ऐसा जिसने ज्ञायक जाननेवाला भगवान ज्ञानरसकन्द का जिसे ज्ञान हुआ है, उसके परिणाम तो ज्ञान और दर्शन और आनन्द के होते हैं। तो उस परिणाम को राग नहीं

जानता। ज्ञानी उस परिणाम का कर्ता है। राग का यहाँ ज्ञान हुआ, तथापि वह राग का कार्य नहीं। ज्ञानी को राग का यहाँ ज्ञान हुआ, इसलिए राग कर्ता है और ज्ञान परिणाम जाना, इसलिए उसका कार्य है, ऐसा नहीं है।

अरे! अरे! इसमें एक-एक अक्षर में विवाद उठे बापू! इसने किया नहीं कभी आत्मा का। सब जगत की मजदूरी कर-करके मरकर बहुत अधिक ढ़ोर में जानेवाले हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग ज्ञान को जनवाने का कार्य तो करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं, वही यह चर्चा-प्रश्न है, उसका कि राग है, इसलिए राग का ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। वह ज्ञायक है, इसलिए स्व-पर के प्रकाशक के परिणाम का ज्ञान हुआ। कहो, प्रवीणभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! अरे रे! जगत में कहाँ मिले? ऐसी सच्ची बातें इसे सुनने को न मिले, वह कब विचार करे, और कब करे। आहाहा! यह तो अभी उसका प्रश्न है। ऐसे प्रश्न को जाननेवाले ने प्रश्न किया है, उसका उत्तर है। अब गाथा ७९।

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
पोग्गल-दव्वं पि तहा परिणमदि सएहिं भावेहिं।।७९।।

नीचे हरिगीत

इस भाँति पुद्‌गलद्रव्य भी निज भाव से ही परिणमे,
परद्रव्यपर्यायों न प्रणमे, नहिं ग्रहे, नहिं ऊपजे।।७९।।

यह कोई कथा-वार्ता नहीं है, यह तो भागवत कथा है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसका ज्ञान होना और राग होना, उसका ज्ञान होना, उसकी यह बातें हैं, भाई। आहाहा! टीका, टीका है? **जैसे मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर...** है टीका? है या नहीं, आया या नहीं? कहीं बहियाँ भी देखी न हो वे, पाप की बहियाँ देखी हो सब, वहाँ फिल्म की और गाँव की पंचायत की। आहाहा!

टीका -मिट्टी, मिट्टी है न मिट्टी, वह स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर, घड़े की पर्याय को मिट्टी करती है। घड़े की पर्याय को कुम्हार नहीं करता।

मुमुक्षु : वकील करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वकील वकालत की भाषा नहीं करता। वकील है न ? जज के समक्ष दलील करे, वह दलील आत्मा नहीं करता। वह जड़ की अवस्था है। आहाहा! प्रभु! तेरी लीला तो देख, तू कौन है, भाई! आहाहा! तेरी खबर बिना वर बिना की बारात जोड़ दी है, उसे बारात नहीं कहा जाता, वह तो मनुष्यों का टोला कहलाता है। इसी प्रकार आत्मज्ञान बिना की बातें जितनी सब चींटी के नगर जैसे हैं, वे तो सब। आहाहा!

मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक, घड़े की पर्याय में मिट्टी पसरकर घड़ा होता है, कुम्हार से नहीं।

मुमुक्षु : यह समझ में नहीं आता, मिट्टी से घड़ा होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिट्टी, अभी दृष्टान्त समझ में नहीं आता, वहाँ तो सिद्धान्त कहा जाता है, भाई का प्रश्न था न ? रोटी का नहीं ? प्रेमचन्दभाई का। लन्दन में रहते हैं, वहाँ यहाँ का वाँचन करते हैं, आये, छह-सात दिन हुए। रोटी का प्रश्न था न ? रोटी आटा से होती है, रोटी बेलन से नहीं, तवे से नहीं, बाई के हाथ से नहीं, बाई का हाथ रोटी को स्पर्श नहीं करता। यह बेलन आटे को ऐसा-ऐसा हो, वह आटे को स्पर्श नहीं करता। अरे रे! अब यह बात कहाँ से समझ में आय ?

मुमुक्षु : बेलन में आटा चिपक न जाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आटा स्वयं है, रोटीरूप हुआ है। वह आटे की पर्याय रोटी है। वह तवे की नहीं, स्त्री की नहीं, अग्नि की नहीं।

मुमुक्षु : यह दुकान अलग प्रकार की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लखुभाई! क्या कहते हैं ? यह दुकान अलग प्रकार की है, कहते हैं। आहाहा!

अरे भगवान! तू कौन है और कहाँ है और कैसा है तेरा स्वरूप ? आहाहा! श्रीमद् में नहीं आया ? 'मैं कौन हूँ, आया कहाँ से, और मेरा रूप क्या ?' सोलह वर्ष देह की स्थिति। आत्मा अनादि-अनन्त, उसे कुछ स्थिति नहीं। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया ? मैं हूँ आत्मा, कहाँ से आया ? मैं अनादि हूँ। वास्तविक स्वरूप क्या है ? मेरा वास्तविक स्वरूप

तो ज्ञाता-दृष्टा-आनन्द है। आहाहा! राग और पुण्य-पाप के परिणाम, वे आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है। आहाहा! अरे रे! यहाँ तो अभी स्त्री मेरी अर्धांगिनी कहलाये, आधा अंग मेरा और आधा उसका, धूल भी नहीं, सुन न! तूने आत्मा को मार डाला। आहाहा! यह मेरा पुत्र है। मानो तू, मानो तू तो तू, वह मैं है तू, वह तू मैं हूँ। स्नान-बनान जाना हो, यह राग। पागल के गाँव अलग नहीं होते। हर गाँव में पागल है। सब देखा है और हमने तो सब जाना है, जगत को सब, सब प्रकार से (जाना है)। यहाँ तो ८९ हुए। ७० वर्ष से तो यह सब दुकान से अभ्यास है। आहाहा! भाई!

मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक होकर... इसी प्रकार आटा स्वयं रोटी में अन्तर्व्यापक होकर रोटी बनाता है आटा। स्त्री नहीं, बेलन नहीं, अग्नि नहीं, तवा नहीं। अरे रे! ऐसा **आदि-मध्य-अन्त में...** मिट्टी स्वयं घड़े की आदि में मिट्टी। उसे कुम्हार था, इसलिए घड़ा हुआ—ऐसा नहीं है। आहाहा! घड़े की पर्याय की आदि में शुरुआत में मिट्टी थी, इसलिए हुआ। मध्य में मिट्टी थी, अन्त में मिट्टी। घड़े की पर्याय हुई तो कुम्हार का हाथ ऐसे-ऐसे हुआ, इसलिए वह घड़े की पर्याय हुई—ऐसा नहीं है, क्योंकि परद्रव्य से परद्रव्य की पर्याय तीन काल में नहीं होती। समझ में आया? यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू! अरे रे! इसने क्या किया और इसे योगफल क्या आयेगा? देखो न, यह बेचारे गुलाबचन्दभाई को रोग आया वह योगफल अभी, आहाहा! मुझे मार डालो, मुझे पटरी में, रेल की पटरी में ले जाओ, यह योगफल।

मिट्टी स्वयं घड़े में अन्तर्व्यापक अर्थात्, घड़े की पर्याय की करनेवाली तो मिट्टी है। आदि, मध्य, अन्त में मिट्टी है। घड़े की आदि में, मध्य में और अन्त में मिट्टी है। उसकी आदि में कुम्हार था, इसलिए घड़ा हुआ है, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पागल कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल ही है, बापू! दुनिया पागल है। परमात्मप्रकाश में तो कहा है (कि) धर्मी जीव को पागल, पागल माने ऐसा है। पागल लोग धर्मी को पागल माने, यह क्या बात करते हैं पागल जैसी। आहाहा!

हल चलता है न हल, खेत, जहाँ खड्डा पड़ता जाये और धूल, वह हल खड्डे को स्पर्शा नहीं है, धूल को स्पर्शा नहीं है। यह तो कौन माने? सुनो, अब सुनो। एक हल चलता है न, उस हल को वह आदमी खड़ा है, वह ऐसे करे, उससे हल नहीं चलता, हल का परिणाम परमाणु है उसके हैं, उन परमाणुओं से स्वयं से हल चलता है। और वह हल धूल को स्पर्श नहीं करता और धूल में खड्डा दिखायी दे ऐसा।

अरे! अरे! देखो, यह हाथ यहाँ स्पर्शा नहीं, बिल्कुल स्पर्श नहीं करता, क्योंकि इस हाथ में और इसमें दो में अभाव है। तथापि यहाँ खड्डा दिखता है। देखो, ऐसे खड्डा होता है न, वह खड्डे की पर्याय उसके कारण से हुई नहीं। वे परमाणु के दल की वह पर्याय उस काल में वह होनेवाली थी, उस काल में वह हुई है। अर रर! ऐसी बातें हैं।

यहाँ तो 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञानता', सबका ऐसे कर दूँ, अमुक को ऐसे कर दूँ, ऐसे ठिकाने लगा दूँ। आहाहा! लड़कियाँ भी बड़ी, ठिकाने लगा दें (विवाह कर दें)। नहीं तो अपने कहाँ चले। लड़के भी बड़े हुए, ठीक में कन्य आवे तो ठीक कहलाये। साधारण कन्या आवे तो अपने घर का... मार डाला जगत को। नवरंगभाई! यह तुम्हारा सब पोल, यह लालूभाई! तुम्हारा अर्थात् इस जगत का। ऐसा है, बापू! क्या करें?

प्रभु! तेरी प्रभुता कोई अलग है। ऐसी प्रभुता में जो परिणाम अपने होते हैं, उस समय वह परिणाम अपने से हुए हैं और राग का ज्ञान हुआ, वह भी अपने से हुआ है, यह यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! अभी तो दृष्टान्त चलता है, **आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर घड़े को ग्रहण करती है...** मिट्टी घड़े को पकड़ती है, घड़े की पर्याय मिट्टी करती है, **घड़ेरूप उत्पन्न होती है।** मिट्टी घड़ेरूप होती है, ग्रहण करती है अर्थात् क्या कहा? जरा सूक्ष्म बात है। वह घट की पर्याय उस काल में होनेवाली ही थी, उसे मिट्टी ग्रहण करती है, उसे पहुँचती है बस। घड़े की पर्याय जो है, उस काल में वह होनेवाली थी ही, उसे प्राप्य कहते हैं। होना है उसे प्राप्य कहते हैं, उसे मिट्टी ग्रहण करती है अर्थात् पहुँचती है। मिट्टी पहुँचती है, कुम्हार नहीं, आहाहा! अभी तो दृष्टान्त, फिर सिद्धान्त तो कठोर पड़ेगा। आहाहा!

घड़ेरूप परिणमित होती है और घड़ेरूप उत्पन्न होती है, घड़े की अवस्था, पहले जो अवस्था थी, उसे बदलती है, बदलती है स्वयं मिट्टी। घड़ा के पहले हो न, मिट्टी का

पिण्ड, वह पिण्ड की अवस्था बदलती है वह मिट्टी, और पिण्ड की अवस्था घटरूप होती है, वह मिट्टी करती है। मिट्टी का प्राप्य घड़ा, उस काल में वह पर्याय होनेवाली ही थी, उसे मिट्टी ने प्राप्य-ग्रहण किया है, और उस काल में पूर्व के पिण्ड की अवस्था का व्यय होने का ही था, हुआ, आहाहा! उसे मिट्टी, उसका विकार्य करती है, अर्थात् पलटाती है, और घड़ेरूप से उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हुआ, मिट्टी उसरूप उत्पन्न हुई है। आहाहा!

अब यहाँ तो पूरे दिन हमने यह किया और यह किया, और यह किया और दुनिया को ऐसा किया और दुनिया को सुधारा। मार डाला जीव को। वह ज्ञातादृष्टा है, ऐसा इसने माना नहीं, और यह है, ऐसा माना, इसलिए वह मार डाला इसे। जीव को मरणतुल्य कर डाला है। पाठ है न? २८ कलश हैं। मरणतुल्य कर डाला, प्रभु! जीवन्तज्योति ज्ञातादृष्टा चैतन्य ज्योति को तूने नहीं स्वीकार कर राग का कार्य मेरा और पर के कार्य मेरे, इस समय तूने जीव की ज्योति का तूने अनादर किया, तूने मार डाला। आहाहा!

मिट्टी स्वयं घड़ेरूप उत्पन्न होती है, **उसी प्रकार,** यह दृष्टान्त। **उसी प्रकार जीव के परिणाम को...** अर्थात् कि जानने-देखने के परिणाम को, **अपने परिणाम को...** अर्थात् राग हुआ वह उसका-पुद्गल का परिणाम है। **अपने परिणाम के फल को...** अर्थात् हर्ष-शोक के परिणाम हुए, उस पुद्गल के फल को **न जानता हुआ ऐसा पुद्गलद्रव्य...** आहाहा! गाथा गजब आयी है! है न सामने, सामने पुस्तक है या नहीं? किस शब्द का अर्थ होता है। ऐई बापू! आहाहा! अरे रे! इसे कहाँ अवसर मिला है। मनुष्य भव, आहाहा! उसमें यह चीज़ न समझे और सम्यग्ज्ञान का डोरा न पिरोवे, तब तो वह सुई खो जायेगी। उसे यहाँ सम्यग्ज्ञान,... आहाहा! मैं तो एक ज्ञायक जाननेवाला हूँ, राग का ज्ञान, वह भी मुझसे हुआ है, वह राग का ज्ञान नहीं, यह यहाँ सिद्ध करना है। पुद्गल से ज्ञान के परिणाम हुए- राग से, ऐसा नहीं है, यह सिद्ध करना है।

देखो! जीव के परिणाम को और अपने परिणाम को, ऐसी अपने पहले व्याख्या हुई थी ऊपर। और अपने परिणाम में भी **न जानता हुआ ऐसा पुद्गलद्रव्य स्वयं परद्रव्य के परिणाम में...** अर्थात् अब क्या? आत्मा ज्ञायक है, उसके परिणाम यह राग और पुद्गल से... वह परद्रव्य है। आहाहा! राग—दया, दान, काम, क्रोध के भाव जो यह विकार हुआ, वह पुद्गल के परिणाम, वह पुद्गल का फल। अब कहते हैं कि यह पुद्गल के परिणाम

को, जीव के परिणाम को, पुद्गल के फल को नहीं जानता ऐसा पुद्गलद्रव्य, परद्रव्य के परिणाम में; परद्रव्य अर्थात् आत्मा, आत्मा के जानने-देखने का परिणाम वह राग की अपेक्षा से परद्रव्य के परिणाम हैं।

अब, यह अपने आप पढ़े तो कुछ समझ में आये ऐसा नहीं है। कभी। आँकड़ा... यह लोग आज आये हैं न मौके से, उन्हें खबर तो पड़े कि यहाँ कुछ दूसरी बात है। दुनिया में चलती है कुछ न कुछ गप्प गोला और यह कुछ दूसरा है। आहाहा!

क्या कहा ? जैसे घड़ेरूप से उपजती है मिट्टी, निपजती है मिट्टी और बदलती है मिट्टी। पिण्ड का घड़ा हुआ। ऐसे पुद्गल, जीव के परिणाम को, अपने परिणाम को राग को और अपने परिणाम के फल को नहीं जानता, ऐसा पुद्गलद्रव्य। रागादि जड़, पुद्गल जड़, राग जड़, वह सब एक पुद्गल में जाता है, वह स्वयं परद्रव्य के परिणाम में परद्रव्य के अर्थात् राग है, उससे परद्रव्य आत्मा, उसके जो ज्ञान के परिणाम, उस राग से परद्रव्य के परिणाम, ऐसा कहा जाता है। अरे रे! परद्रव्य के परिणाम में अर्थात् क्या कहा ? समझ में आया ? राग-द्वेष आदि परिणाम, वह जीव के परिणाम को नहीं जानते, उसके परिणाम को, उसे भी नहीं जानता, उसके फल को भी नहीं जानता, ऐसा पुद्गल है, राग आदि। आहाहा! वह राग **परद्रव्य के परिणाम में अन्तर्व्यापक होकर, आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर उसे ग्रहण नहीं करता।** आहाहा! धीरे से समझना, बापू! धीरे-धीरे अर्थ होता है। यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव एक समय में तीन काल का ज्ञान, उनकी यह वाणी है, उसे सन्त तो आड़तिया होकर उनकी बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

जो राग—पुण्य और पाप के परिणाम हुए न, पाप के हुए वे अपने को नहीं जानते, आत्मा के परिणाम ज्ञाता को नहीं जानते, उसके फल को अर्थात् राग के फल को हर्ष-शोक को नहीं जानता, वह पुद्गलद्रव्य स्वयं परद्रव्य के परिणाम में अर्थात् आत्मा के जानने-देखने के परिणाम में, आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ, उस सम्यग्दर्शन के परिणाम में अन्तर्व्यापक होकर, वह राग अन्तर में जाकर, आहाहा! वह ज्ञान के परिणाम को यहाँ मध्य-अन्त में व्यापकर उसे ग्रहण नहीं करता। क्या कहा ? भाई!

भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप, उसका भान होकर जो ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम हुए,

आनन्द के हुए, उसे राग है, वह राग को जानता नहीं, वह परिणाम को जानता नहीं, राग के फल को जानता नहीं। ऐसा पुद्‌गलद्रव्य रागादि, वह परद्रव्य के परिणाम अर्थात् आत्मा के ज्ञातादृष्टा के परिणाम जानने-देखने के भाव, आहाहा! उसे अन्तर्व्यापक होकर, राग अन्दर जाकर आदि-मध्य-अन्त में, यहाँ ज्ञान के परिणाम जो हुए, उसकी आदि में राग है, वह मध्य में है, ऐसा है नहीं। आदि-मध्य में-अन्त में व्यापकर उसे ग्रहण नहीं करता। क्या कहते हैं। आहाहा! प्रेमचन्दभाई! आये हो बराबर। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! क्या करें? तू कौन है भाई!

कहते हैं कि जहाँ आत्मा का ज्ञान हुआ और ज्ञान के परिणाम, वस्तु तो ज्ञायक त्रिकाल है, उसके परिणाम जानने के हुए, समकित के हुए, शान्ति के हुए, आनन्द के हुए, उन परिणाम में राग का पुद्‌गल है, उसका ज्ञान हुआ, इसलिए वह राग कर्ता और यह ज्ञान के परिणाम उसका कर्म, वह राग अन्तर्व्यापक होकर ज्ञान के परिणाम को करता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

ऐसी बातें हैं, प्रभु! क्या हो? अरे रे! जिन्दगी चली जाती है, उसमें यह न किया तो हो गया, वह तो पशु में-नरक और पशु अवतार, आहाहा! अरबोंपति व्यक्ति दूसरे दिन कूकड़ी के गर्भ में बच्चा हो, गाय के गर्भ में, आहाहा! अरे रे! क्योंकि जिसने आत्मा को सेवन नहीं किया और जाना नहीं और पुण्य-पाप को सेवन किया, वह कषाय है और कषाय है, वह आत्मा की वक्रता है। उस वक्रता को सेवन किया है, वे वक्रता में अवतरित होंगे। यह मनुष्य खड़ा है, यह तिर्यंच ऐसे आड़े हैं, गाय, भैंस। यह वक्रता की, वे वक्रता में जायेंगे। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश है, बापू! आहाहा!

परद्रव्य के परिणाम में अर्थात्? राग है, वह पुद्‌गल के परिणाम हैं, वे परिणाम जीव के परिणाम को; परद्रव्य के परिणाम अर्थात् जीव के परिणाम को और ज्ञाता-दृष्टा के, आनन्द के मोक्षमार्ग के परिणाम को अन्तर्व्यापक होकर—यह राग अन्तर जाकर व्याप्त होकर, शुरुआत में राग था तो वह ज्ञाता के परिणाम हुए, ऐसा नहीं है। आहाहा! देवीलालजी! बापू! ऐसा तो सुनने को कभी मिले भाई। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू!

परद्रव्य के परिणाम में? रागादि है दया, दान, काम, क्रोध के परिणाम, वे पुद्‌गल हैं और उनसे जो परद्रव्य के परिणाम अर्थात् आत्मा के जानने-देखने के परिणाम, वे

परद्रव्य के परिणाम हैं। समझ में आया? भाषा तो सादी आती है, प्रभु! परन्तु अब भाव समझना तो बापू! क्या हो प्रभु! तूने तेरी दया कभी नहीं की। पर की दया करने चल निकला, जो कर नहीं सकता। उसका भाव आवे, पर दया का, वह भी राग और जीव की हिंसा है। अररर! उस राग को भी... राग आया, परन्तु ज्ञानी जो आत्मा का जाननेवाला है, उसके परिणाम में राग है, इसलिए राग का ज्ञान हुआ, राग कर्ता और ज्ञान के परिणाम कर्म—ऐसा है नहीं। समझ में आया? दो-तीन लाईन में भी कठिन, भगवान! क्या करे? आहाहा!

मुमुक्षु : राग में प्रमेयत्व धर्म है

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ज्ञेय है। ज्ञेय है और ज्ञायक है, वह भी व्यवहार है। राग है, वह ज्ञान के परिणाम का ज्ञेय है और ज्ञेय है, इसलिए यहाँ ज्ञान के परिणाम हुए, ऐसा नहीं, ऐसा। और यहाँ जाननेवाला है, और वह ज्ञात होता है, यह भी व्यवहार है। निश्चय से तो ज्ञान के परिणाम हैं, वे अपने परिणाम को स्वयं जानते हैं। आहाहा!

अरे रे! दुनिया कहाँ भटकती है और कहाँ,... इसे ऐसी बात सुनने को मिले, उसमें पाँच-पचास लाख रुपये हुए, करोड़-दो करोड़, देखो! वह तो बड़ा पागल। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत झेल सकता है पैसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा?

मुमुक्षु : बहुत झेल सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी झेलता नहीं पैसा। पैसा मारे डाले, मर नहीं गया? दो अरब चालीस करोड़ थे, वह शान्तिलाल खुशाल, गोवा में, दो अरब चालीस करोड़। अपना पणाशणावाला, दशाश्रीमाली बनिया था। दो अरब चालीस करोड़। ६१ वर्ष की उम्र में उसकी बहू थी, उसे हेमरेज हो गया, उसे मुम्बई आकर आये हुए, दो-चार दिन रहे, वह महिला तो असाध्य थी, दो चार दिन हुए वहाँ ६१ वर्ष की उम्र। रात्रि में (कहा) मुझे दुखता है। दो अरब चालीस करोड़, साठ लाख के मकान तो वहाँ गोवा में। वहाँ एक चालीस लाख का, दस-दस लाख के दो। वह भाई पाँच मिनिट में (गुजर गये)। रिश्तेदार था, एक है परिचित भाई, डॉक्टर को बुलाओ, डॉक्टर को बुलावे वहाँ देह छूट गयी। जाओ भटकने

अब। आहाहा! अररर! यह दो अरब चालीस करोड़, उपजा होगा कहीं ढोर-बोर में मूल तो। नरक में न जाये, माँस और शराब न खाये (पीये) न। अर रर! प्रभु! प्रभु! क्या करे?

मुमुक्षु : वह तो सुख की मौत कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो सुख की मौत कहलाये न? किसकी? वह मौत तो सुख की मौत कहलाये न? सुख की और ढोर में अवतरित हुआ वह सुख की। कषाय के भाव में ममता में देह छूटी। आहाहा!

यहाँ तो वे परद्रव्य के परिणाम हैं न, वह क्या है? राग और द्वेष के परिणाम, दया, दान के, काम-क्रोध के परिणाम, वे पुद्गल के हैं और उसकी अपेक्षा से परद्रव्य के परिणाम अर्थात् आत्मा के जानने-देखने के परिणाम, वे परद्रव्य के परिणाम कहलाते हैं। राग की अपेक्षा से वे परद्रव्य के परिणाम कहलाते हैं। आहाहा!

आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर उसे ग्रहण नहीं करता, राग आत्मा के ज्ञान परिणाम को उत्पन्न नहीं करता। ध्रुव परिणाम जो ज्ञान परिणाम हुए, वहाँ राग को जानने के और अपने को जानने के जो ज्ञान परिणाम हुए, वे तो उस समय ध्रुव वे परिणाम ही होनेवाले थे। उन्हें राग ग्रहण करता है, राग उसे प्राप्य होकर उसे पकड़ता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरेरे! **ग्रहण नहीं करता...** वह रागादि परिणाम **उसरूप परिणमित नहीं होता।** उसरूप वह आत्मा के जानने-देखने के परिणाम को, परिणामरूप से राग उत्पन्न नहीं होता और **उसरूप उत्पन्न नहीं होता...** ज्ञान के परिणामरूप राग उत्पन्न नहीं होता, ज्ञान के परिणाम से तो स्वयं अपने को पकड़ा है, आत्मा ने प्राप्य होकर ध्रुव, उस समय स्वयं उत्पन्न हुआ है और पूर्व से बदला है और स्वयं आत्मा, उस परिणाम को राग व्याप्त होकर करता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

बहुत कठिन, मोटाणी! अरे प्रभु! यह भाग्य बिना तो कान में न पड़े, ऐसी बात है। बापू! दुनिया के भाग्य तो धूल हैं, वह भाग्यशाली नहीं, भांगशाली है। आहाहा! यह चीज़ बापू! परम सत्य का भनकार कान में पड़े, वह भी भाग्य बिना पड़ता नहीं। भाई! समझे तो फिर और... आहाहा! वह उपजता भी नहीं.... विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)